ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-1* Issue-12* January-2017
Innovation The Research Concept

प्राचीन भारत में लोक महोत्सव (बौद्धकाल के विशेष संदर्भ में)

शैलेन्द्र कुमार मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
एम0डी0पी0जी0 कालेज,
प्रतापगढ़

सारांश

सामाजिक जीवन में उत्सवों की व्यापकता एवं स्वरूप– अति प्राचीन युग से मनुष्य के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में विभिन्न उत्सवों का बड़ा महत्व रहा है। भारतीय साहित्य में वैदिक युग से ही उत्सवों के उल्लेख उपलब्ध होते है।

मुख्य शब्द : लोक महोत्सव, उत्तरकालीन साहित्य, भारतीय साहित्य

प्रस्तावना

वैदिक–वाड्.मय में उपलब्ध एतद्विषयक सामग्री से विदित होता है कि भारतीय आर्य बड़े उत्सव–प्रेमी थे और वे समय–समय पर आनन्द मनाने के लिए उत्सव–समारोहों का आयोजन किया करते थे। उत्तरकालीन साहित्य में भी उत्सव मननाने के वर्णन का अभाव नहीं दिखता। उत्सव के आयोजन में जनता के साथ राज्य के सक्रिय सहयोग के भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं। रामायण के अनुसार उत्सव तथा समाज राज्य की लोकप्रियता का संवर्द्धन करते हैं। कौटिल्य का कथन है कि राज्य को जनता के मनोरंजनार्थ यात्रा, समाज, उत्सव और प्रवहण का आयोजन करना चाहिए।[1] अशोक के अभिलेख समाज नामक उत्सव का उल्लेख करते हैं। समाज से उन दिनों धार्मिक अथवा सामाजिक समारोहों पर एकत्र होने वाले जनसमूह का बोध होता है। कलिंगाधिपति खारबेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने सफल विजय अभियान के उपलक्ष्य में कलिंगवासियों के रंजनार्थ एक महोत्सव का आयोजन किया जिसमें मल्लयुद्ध, वादन, गायन तथा नृत्यादि के प्रदर्शन किये गये ।

बौद्ध–पिटकों तथा जैन–सूत्रों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में बड़ी धूम–धाम से धार्मिक एवं लौकिक उत्सव मनाये जाते थे। जैन–सूत्रों[2] से ज्ञात होता है कि उन दिनों लोग विभिन्न देवताओं, जैसे–इन्द्र, स्कन्द, रूद्र, मुकुन्द आदि की पूजा तथा यक्ष, स्तूप मन्दिर, वृक्ष नदी, सरोवर इत्यादि की पूजा के लिए समय–समय पर समारोहों का आयोजन करते थे । इन उत्सवों की प्रमुख विशेषताएँ थीं– विशिष्ट भोजन, नृत्य, संगीत आदि पालि–पिटक में उत्सव मनाने के लिए एकत्र जनसमूह के लिए समज्ज शब्द प्रयुक्त हुआ है जो पाणिनि[3] के समज्या का रूपान्तर है। समज्या का अर्थ है– 'वह स्थान जहाँ लोग एकत्र होते हैं' चुल्लवग्ग में गिरज्जसमज्ज का उल्लेख आया है जो राजगृह में किसी पहाड़ी पर मनाया गया उत्सव था।[4] यह संभवतः धार्मिक उत्सव था तभी तो उसे पहाड़ी पर मनाया गया। हो सकता है जनधारणा के अनुसार उस पहाड़ी को किसी देवता का वास स्थान माना जाता होगा । इस उत्सव के वर्णन में यह भी कहा गया है कि राज्य के उच्च पदाधिकारियों को भी आमंत्रित कर उनके लिए विशेष आसन की व्यवस्था की गयी थी । सिगालोवाद–जातक के अनुसार समज्ज में नृत्य, गायन, वादन, आख्यान, ऐंन्द्रजालिक खेल, रस्सी पर चलने आदि के प्रदर्शन किये जाते थे। जातकों में समज्ज का प्रयोग किया गया है मनोरंजनार्थ एकत्र जनसमूह तथा मेले के अर्थ में । समज्ज के आयोजन प्रायः मांगलिक अवसर पर हुआ करते थे । जातक कथाओं में उत्सव को नक्खत भी कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि समज्ज उस दिन मनाया जाता जो नक्षत्र.विचार से धार्मिक कृत्य के लिए शुभ होता । कभी कभी समाज का आयोजन राजांगण में किया जाता था[5] और उस अवसर पर वहाँ मुख्य रूप से मल्लयुद्ध था।[6] धनुर्वेद, हस्ति–व्यायाम, घुड़दौड़, नाटक, संगीत प्रतियोगिताएँ आदि द्वारा जनता का मनोरंजन किया जाता था।[7] ऐसे उत्सव को वास्तव में लौकिक कहा जा सकता है और इनकी तुलना उस उत्सव से की जा सकती है जो चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा राजधानी में प्रति–वर्ष मनाया जाता था। उसमें भेड़, जंगली साँढ़, हाथी, गैंडे आदि की लड़ाइयाँ और रथ दौड़ दिखलाये जाते थे ।

रथदौड़ में प्रयुक्त रथ विशेष प्रकार का होता था जिसमें दो बैलों के मध्य एक घोड़ा जोता जाता।[8]

पालि–निकाय से ज्ञात होता है कि उन दिनों मनाये जाने वाले महोत्सवों का स्वरूप कई दिनों तक चलने वाले मेलों वाले महोत्सवों का स्वरूप कई दिनों तक चलने वाले मेलों जैसा हो गया था। इन मेलों में खेल तमाशे देखने के लिए लोग बड़ी संख्या में जमा हो जाते थे । दीर्घ–निकाय के अनुसार दर्शकों को मनोरंजन के अनेक कार्यक्रमों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता था, जैस–नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घड़ा पर तबला बजाना, समूहगान, लोहे की गोली का खेल, बाँस का खेल, घोपन (उस समय का एक खेल जिसे चांडाल दिखाया करते थे), हस्ति–युद्ध , अश्व–युद्ध, महिषा–युद्ध, वृषभ–युद्ध, बकरों का युद्ध, भेड़ों का युद्ध, मुर्गो की लड़ाई की चालें इत्यादि।[9] मेले में नट और ऐंद्रजालिक के नृत्य तथा खेल बड़े ही मनोरंजक हुआ करते थे–लोग हँसते–हँसते लोट–पोट हो जाते।[10] नटों के खेल साहसिक तथा खतरनाक हुआ करते थे। वे रज्जु नृत्य करते और भालों के ऊपर छलाँग मारते जिसे देखकर दर्शकों को रोमांच हो जाता।[11] कभी–कभी तो भाले पर गिर जाने से नट की मृत्यु ही हो जाती। सँपेरों के खेल भी दर्शनीय होते थे।[12] शंख फूँकनेवाले (शंख धमक)[13] तथा भेरी वादक[14] वातावरण को संगीतमय बना देते। लोग मस्ती में आ जाते और माला, इत्र, विलेपन का खुलकर उपयोग करते, मद्य, मांस और मछली का जी भर सेवन करते।[15] जैन सूत्रों के अनुसार उत्सवों में प्रमुखता रहती थी। भोजन, मद्यपान और विलासिता के कर्मो की।[16]

मेले प्रायः नगरों में लगते थे जिसे देखने के लिए निकटवर्ती ग्रामों के निवासी बड़ी संख्या में एकत्र हुआ करते। राजधानियों में उत्सव मनाने की घोषणा राजाज्ञा से भरी–घोषणा द्वारा की जाती थी। नक्षत्र–भरी घोषणा सुनते ही सभी नगरवासी आनन्द मनाने के लिए घर से निकल पड़ते।[17] लोग अपने दैनिक व्यवसाय बन्द कर खाते, पीते और इष्ट–मित्रों को खिलाते–पिलाते[18] ब्राह्मणों का भोजन सत्कार मांस–भात से होता और इष्ट–देवों की पूजा की जाती।[19] जैन–सूत्रों के अनुसार ब्राह्मण, श्रमण, अतिथि, निर्धन तथा भिखमंगों को भोजन कराया जाता था।[20] राजधानी में पर्व और मेले के अवसर पर बड़ी धूमधाम देखने को मिलती। नगरवासी अपने नगर को यथासंभव अलंकृत करने का प्रयास करते। उत्सव की शोभावृद्धि में राजा भी अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। दुम्मेध–जातक में राजगृह के एक उत्सव का वर्णन इस प्रकार मिलता है–''एक उत्सव के दिन संपूर्ण राजगृह के एक उत्सव का वर्णन इस प्रकार मिलता है– ''एक उत्सव के दिन संपूर्ण राजगृह नगर को देवनगर की भाँति सजाया गया। मगधराज ने एक पूर्ण अलंकृत मंगलहस्ति पर आरूढ़ हो अपने अनुचरों के साथ सम्पूर्ण नगर की प्रदक्षिणा की।'' जातकों के अनुसार मेले प्रायः एक सप्ताह तक चलते थे।[21] कई मेले तो मास भर लगे रहते और उन दिनों लोग मौज में रहते।[22]

कौमुदी–महोदत्सव

अधिकांश हिन्दू–पर्व ऋतु से सम्बद्ध हैं– वसन्त,वर्षा और शीत से तीन प्रमुख पर्वो का उद्‌भव हुआ जिन्हें चार्तुमास्य कहा गया। वसन्त, वर्षा और शरद ऋतुओं का आगमन कृषि प्रधान भारतीय आर्य–जाति के लिए नयी आशा, उमंग एवं सक्रियता का प्रतीक बन गया। उन्होंने आरम्भ में यज्ञ–समारोह द्वारा इनका समुचित स्वागत सत्कार किया जो कालान्तर में प्रसिद्ध पर्व बन गये। चार्तुमास्य समारोह फाल्गुन, आषाढ़ तथा कार्तिक मास में पूर्णिमा के दिन मनाये जाते थे। वर्षा का अवसान और शरद के आगमन का काल भारतीय कृषक–समुदाय के लिए आनन्दायक रहा है। जब कृषक एक ओर पकते धान के खेतों में पूर्ण अन्नपूर्णा धरती का दर्शन करता है, और दूसरी ओर निरभ्र आकाश पर दृष्टिपात करता है, तो उसका हृदय पुलकित हो उठता है। अतएव कार्तिक पूर्णिमा के दिन जो चार्तुमास्य मनाया जाता था वह अत्यन्त उल्लासमय हो गया। पालि–निकाय में इस पर्व की संज्ञा मिलती है– कौमुदी अथवा कत्तिका। शरद पूर्णिमा की चाँदनी किसके हृदय में आनन्द का संचार नहीं करती ? दीर्घ–निकाय से ज्ञात होता है कि मगधराज अजातशत्रु शरद पूर्णिमा की शोभा का अवलोकन कर उमंग का अनुभव करते थे । कौमुदी की रात्रि को वे राजामात्यों से घिरे, उत्तम प्रासाद के ऊपर बैठे थे, तब उन्होंने कहा 'अहा! कैसी रमणीय चाँदनी रात है! कैसी प्रासादिका चाँदनी रात है।[23]

जातकों में कौमुदी अथवा कत्तिका का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है जिससे प्रतीत होता है कि यह पर्व उन दिनों सर्वाधिक लोकप्रिय महोत्सव के रूप में मनाया जाता था। यही एक त्योहार था जिसे धनी–निर्धन, वृद्ध–युवा, स्त्री–पुरूष, सभी समान उमंग के साथ मानते थे । राजगृह,[24] वाराणसी[25] तथा श्रावस्ती[26] आदि प्रसिद्ध नगरों में कौमुदी–महोत्सव के बड़े शानदार ढंग से मनाने के वर्णन जातकों में किये गये हैं। उम्मदन्ती–जातक (527) के अनुसार कत्तिका के दिन नगर परिक्रमा के लिए राजा की षानदार सवारी निकला करती थी। वे सुन्दर अष्व जुते एक भव्य रथ में बैठते, पीछे–पीछे सारे दरबारी चला करते, प्रासादों के झरोखे से सुन्दरियाँ राजा पर पुष्प–वर्षा करती। इच्छा होने पर वे प्रमुख राज–सभासदों के प्रासादों के सामने थोड़ी देर के लिए रूक जाते। उस दिन नगर आकर्षक ढंग से सजाया जाता और रात्रि में सम्पूर्ण नगर दीपों से जगमगाने लगता। संजीव जातक (150) में वर्णन मिलता है कि अजातशत्रु के राज्यकाल में कत्तिका के अवसर पर राजगृह नगर को देवनगर के समान अलंकृत कर दिया गया। उत्सव के दिन सकल नगरवासी छुट्‌टी मनाते और रात में नगर षोभा के अवलोकनार्थ तथा अन्य मनोरंजन के लिए निकलते।[27] स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण धारण करतीं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ अपने प्रेमियों के गले में बाहें डालकर घूमना पसन्द करती,[28] जैसा कि प्रायः आदिवासी क्षेत्रों में देखा जाता है।

कौमुदी महोत्सव का रूप भी मेला जैसा हो गया था और इसे लोग सात दिनों तक आनन्दोल्लास के साथ मनाया करते।[29] इस महोत्सव की सूचना भी नगरवासियों को भरी–घोषणा द्वारा दे दी जाती थी।[30] यह प्रसिद्ध पर्व अभी तक हिन्दू समाज में प्रचलित है, यद्यपि इसका रूपान्तर हो गया है। हिन्दू धर्म में कार्त्तिक पूर्णिमा का ही

नहीं, सम्पूर्ण कार्तिक मास का माहात्म्य है। कहीं शरद पूर्णिमा को सारी रात जागरण की प्रथा है, तो कहीं पतितपावनी भागीरथी के जल में अवगाहन द्वारा मन शरीर को पवित्र करने का महत्व है। सोनपुर का प्रसिद्ध मेला कार्तिक मास में लगता है और पूर्णिमा को हरिहर क्षेत्र में स्नान का महत्व है, जिससे प्रतीत होता है कि यह मेला भी कौमुदी महोत्सव का रूपान्तर है।

साल भज्जिका

पालि–निकाय के अनुसार लोग निश्चित तिथि को शालवन में जाते और शाल पुष्प तोड़कर तथा अन्य क्रीड़ाओं द्वारा खुशियाँ मनाते। इस उत्सव का नाम पड़ा–शालभज्जिका, जिसका शाब्दिक अर्थ है शाल–पुष्पों को तोड़ना। पाणिनि के अनुसार यह उत्सव प्राच्य भारत में प्रचलित हुआ।[31] डॉ0 वॉगेल के मत में मगध तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में ही शालभज्जिकोत्सव विशेष रूप में मनाया जाता था।[32] जातक निदान कथा में शाल भज्जिका का इस प्रकार वर्णन किया गया है– 'कपिलवस्तु और देवदह के मध्य एक पवित्र शालवन है जिस पर दोनों नगरों का अधिकार है। उसे लुम्बिनीवन कहते हैं। उस समय सभी शाल–वृक्ष नीचे से ऊपर तक पूर्ण विकसित पुष्पों से लदे थे। शाल–वृक्ष की शाखाओं में भ्रमर गुंजन कर रहे थे, विभिन्न प्रकार के पक्षी मधुर कुजन करते हुए फुदक रहे थे। सम्पूर्ण बन ऐसा लगता था मानों वह चित्र–विचित्र रंगीन लताओं का वन हो अथवा किसी तेजस्वी राजा का नृत्य–मण्डप । वन की ऐसी षोभा का अवलोकन कर रानी (मायादेवी) के हृदय में केलि करने की इच्छा बलवती हो गयी तो उन्होंने अपनी परिचारिकाओं के झुण्ड के साथ वन में प्रवेश किया।[33] अवदान–शतक में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है–''एक समय में भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। उस समय श्रावस्ती में शालभज्जिका समारोह मनाया जा रहा था। सैकड़ों हजार की भीड़ इकट्ठी हो गयी और शाल पुष्पों का ढेर लग गया, लोग आनन्द मनाने के लिए क्रीड़ा करने लगे और इधर–उधर लगे।[34]

सुरानक्षत्र

अनेक जातक कथाओं में सुरानक्षत्र नाम के एक उत्सव का वर्णन मिलता है। सुरानक्षत्र के दिन स्त्री–पुरूष सभी जी भरकर मद्यपान करते और नाचते गाते। अनियन्त्रित मद्यपान के कारण ही इस उत्सव का ऐसा नाम पड़ा।[35] एक जातक में सुरानक्षत्र का इस प्रकार वर्णन उपलब्ध होता है–'एक बार राजगृह में सुरानक्षत्र मनाया गया। उस दिन सभी ने खूब मद्यपान किया, मांस खाया, लोगों ने उत्तम वस्त्र धारण किया और नृत्य में भाग लिया। बाजार में मद्य–मांस की पर्याप्त बिक्री हुई।[36] यों तो लोकोत्सवों में, मद्य–मांस का सेवन करना तथा नाचना, गाना और बाजा बजाना सामान्य बातें थीं, परन्तु सुरानक्षत्र तो सुरापान के सम्मान के प्रतीक रूप में प्रचलित हुआ, जिससे उस दिन अधिकांश लोग यथाशक्ति मद्यपान करते थे । जनता तो मद्यपान करती ही थी, राजे, महाराजे और तापस भी पीछे नहीं रहते थे। उल्लेख मिलता है कि एक बार अनेक तापस वाराणसी के राजोद्यान में ठहरे। उस दिन नगर में सुरानक्षत्र का उत्सव मनाया जा रहा था अतः काशीराज ने उनके लिए उत्तम मद्य भेजा। तपस्त्रियों ने मद्यपान किया और वे मदोन्मत्त होकर नाचना गाना आरम्भ कर दिया।[37] इस प्रकार के वर्णन अतिरंजित प्रतीत होते हैं क्योंकि सच्चे तापस के लिए मद्यपान सर्वथा निशिद्ध माना गया हैं। हो सकता है यदा–कदा उत्सवों में कोई तपस्वी पथभ्रष्ट हो जाता होगा, लेकिन इस कारण यह निर्णय कर लेना कि तापस भी सुरानक्षत्र के दिन स्वच्छन्द मद्यपान करते थे, अनुचित होगा सुरानक्षत्र में अनियन्त्रित मद्यपान के कारण अप्रिय घटनाएँ भी हो जाती थीं।– नषे की हालत में लोग झगड़ना शुरू कर देते थे जिससे लोगों के हाथ पैर टूटते और सिर फट जाते ।[38]

हस्तिमंगल

हस्तिमंगल (हत्थिमंगल) समारोह राजप्रसाद के प्रांगण में मनाया जाता था,[39] अतः यह राजवैभव का द्योतक था। इससे प्रमुखतः समाज के अभिजातवर्ग का मनोविनोद होता। यह समारोह वस्तुतः हाथियों की षोभा यात्रा अथवा उनका व्यायाम था। सुजीम–जातक (163) में हस्तिमंगल का वर्णन मिलता हे। जिसके अनुसार इस प्रतिवर्ष राजांगण में मनाया जाता था। एक दिन ब्राह्मणों ने राजा के निकट जाकर निवेदन किया–'हे महाराज, हस्तिमंगल का शुभ दिन सन्निकट है अतः उत्सव का आयोजन होना चाहिए'। तदनुसार हस्तिमंगल का आयोजन किया गया। सम्पूर्ण राज प्रांगण अलंकृत किया गया और एक सौ हाथियों को स्वर्णपरिष्टोम, स्वर्णध्वज एवं स्वर्णजाल से सज्जित कर पंक्तिबद्ध खड़ा किया गया। समारोह का संचालन किया एक वेदज्ञ एवं हस्तसूत्रज्ञ ब्राह्मण ने । परम्परानुसार उपयुक्त ब्राह्मण की अनुपस्थिति में समारोह स्थगित कर दिया जाता था।

कर्षणोत्सव

काम जातक (467) में कर्षणोत्सव का उल्लेख मिलता है। पालि–निकाय के अनुसार यह उत्सव प्रतिवर्ष सोत्साह मनाया जाता था। इस समारोह की प्रमुख बात यह थी कि उस दिन हल जोतने का काम राज करता ।

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है जहाँ अन्नपूर्णा धरती माता की पूजा अति प्राचीन काल से होती रही है। धरती माता की छाती पर हल चलाकर ही मनुष्य अन्न उपजाता है,अतः इस कार्य को पवित्र माना गया। वर्षाकाल के प्रारम्भ में पृथ्वी की विशेष पूजा करके हल चलाने का आरम्भ करना श्रेयस्कर माना जाता था। जब धरती माता प्रसन्न रहेगी तभी तो वे आशानुकूल अन्न देगी। प्रथम हल भी साधारण कृषक नहीं चलाता, इस पुण्यकार्य को करता, राजा। जब मिथिला में दुर्भिक्ष पड़ा तो राजा जनक ने स्वर्ण–निर्मित हल से कर्षण कार्य का आरम्भ किया। सांख्यायन–गृह्यसूत्र के अनुसार कर्षण का प्रारम्भ रोहिणी नक्षत्र में होना चाहिए।[40] हल चलाने के पूर्व खेत के पूर्वी छोर पर द्यावा पृथ्वी को बलि देनी चाहिए। पश्चात् ब्राह्मण वैदिक मंत्रोच्चार के साथ हल का स्पर्श करे, तदनन्तर विभिन्न दिषाओं की पूजा की जाये। पारस्कर गृहासूत्र के अनुसार पृथ्वी सीता है, इन्द्रपत्नी है,[41] अतः सीता की पूजा होती थी और लोग वर्षा के लिए इन्द्र का आहान करते थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार पालि निकाय तथा समकालीन धर्मशास्त्र में उपलब्ध सामग्री से प्रतीत होता है कि

तत्कालीन समाज में वर्षा के आरम्भ में कृषिकार्य का सोत्सव श्रीगणेश करने की प्रथा प्रचलित थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अर्थशास्त्र, 1,21*
2. *एस.बी.ई., 22, पृ092*
3. *अष्टाध्यायी, 3/3/99, भाष्य 2/152–समजन्ति तस्यां समज्या।*
4. *चुल्लवग्ग, 5/2/6, 6/2/7*
5. *जातक, 2, पृ0 253*
6. *जातक, 3, पृ0 160, 4, पृ0 81–82, 6, पृ0 277*
7. *जातक, 3 पृ0 46–49, 253, 5 पृ0 282,6 पृ0 275*
8. *मुखर्जी, राधाकुमुद–अशोक, पृ0 129*
9. *ब्रह्मजाल–सुत्त।*
10. *जातक, 4, पृ0 324*
11. *जातक, 1, पृ0 430*
12. *जातक, 2, पृ0 267, 3, 198*
13. *जातक, 1, पृ0 284*
14. *जातक, 1 पृ0 283*
15. *जातक, 2, पृ0 248, 3 पृ0 435*
16. *एस.बी.ई. 22, पृ0 94–95*
17. *जातक, 1 पृ0 250*
18. *जातक, 6, पृ0 328*
19. *वहीं,*
20. *एस.बी.ई. 22, पृ0 92*
21. *जातक, 3, पृ0 434*
22. *जातक, 6 पृ0 329*
23. *दीघ–निकाय, 1, पृ0 47*
24. *जातक, 1, पृ0 508*
25. *जातक, 1, पृ0 499*
26. *जातक, 1, पृ0 433*
27. *जातक, 1 पृ0 499*
28. *वही,*
29. *जातक, 1 पृ0 433*
30. *वही,*
31. *अष्टाध्यायी, 6/264, 2/2/96, 3/3/109*
32. *जातक, 1, पृ0 52*
33. *पृ0 52*
34. *पृ0 201*
35. *जातक, 1, पृ0 489 ये भुय्येन मनुस्सा सुरं पिवन्ति सुराछणो येव किर सो।*
36. *वही*
37. *जातक, 1, पृ0 362*
38. *जातक, 4, पृ0 16*
39. *जातक, 2 पृ0 46–49, 4 पृ0 91, 5, पृ0 286*
40. *सांख्यान–गृह्यसूत्र, 4/13*
41. *पारस्कर–गृह्यसूत्र, 2/17/9*